दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय की तिथि: 07.05.2014

<u>सि.वि.(मु) 4/2014 एवं सि.वि. सं.115-116/2014</u>

मेसर्स फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड ..... याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री रवि गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री योगेन्द्र वशिष्ठ, अधिवक्ता।

बनाम

मेसर्स आत्मा राम प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड ..... प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री जे.पी. सेंघ, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री अमित सेठी, अधिवक्ता, सुश्री पूजा आनंद और श्री सचिन अनेजा, अधिवक्ता।

कोरम:
माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वज़ीरी
<u>न्यायमूर्ति श्री नजमी वज़ीरी</u>

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका एआरसीटी संख्या 1/2011 (पूर्व में आरसीए संख्या 279/2001) ("अपील") में विद्वान अति.जि.न्या. - 02 और वक्फ अधिकरण, नई दिल्ली ("अपीलीय न्यायालय") के 29 अप्रैल, 2013 ("पहला आक्षेपित आदेश") और 28 सितंबर, 2013 ("दूसरा आक्षेपित आदेश") (इसके बाद सामूहिक रूप से "आक्षेपित आदेश" के रूप में संदर्भित) के आदेशों से उत्पन्न हुई है।

आक्षेपित आदेशों द्वारा, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता/किराएदार को निर्देश दिया कि वह अपील के निर्णय तक आत्मा राम मेंशन (पूर्व में सिंधिया हाउस) ("लीज पर दिया गया परिसर") के शोरूम नंबर 9 के आधे हिस्से के साथ-साथ भूतल पर एक बाथरूम, कोलकी और गैरेज नंबर 12 और 13 के उपयोगकर्ता शुल्क के लिए प्रति माह 1,60,000/- (केवल एक लाख साठ हजार रुपये) की राशि जमा करे। इसके बाद याचिकाकर्ता को किरायेदार और प्रत्यर्थी को मकान मालिक के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

2. यह न्यायालय सामान्यतः, जब अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अपने पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए कहा जाएगा, तो अपीलीय न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार के ऐसे प्रयोग में - विशेष रूप से अंतरिम प्रकृति के - हस्तक्षेप करने में अनिच्छुक रहेगा। हालाँकि, याचिका में उठाए गए कथनों की प्रकृति के कारण - विशेष रूप से आवेदन की धारणीयता के मुद्दे के संबंध में, जिससे आक्षेपित आदेश उत्पन्न हुए और अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित आदेश पारित करने के क्षेत्राधिकार के संबंध में - और इसकी विशिष्ट परिस्थितियों को देखते हुए इस न्यायालय ने मामले की सुनवाई की है।

3. दोनों पक्षकारगण के बीच विवाद, जो अब दो दशकों से चल रहा है और जिसने उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय को भी जन्म दिया है - जो अपने आप में एक लोकस क्लासिकस है,1 का मूल 1992 में मकान मालिक द्वारा किरायेदार के विरुद्ध पट्टे पर दिए गए परिसर के संबंध में दायर बेदखली याचिका से जुड़ा है, जो लगभग 1944 से किरायेदारी के अधीन था। दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 (**"अधिनियम"**) की धारा 14 (1) (बी) के तहत दायर याचिका को 19 मार्च, 2001 को अनुमति दी गई थी और किरायेदार को पट्टे पर दिए गए परिसर को खाली करने का निर्देश **(बेदखली का आदेश)** दिया गया था क्योंकि उसने मकान मालिक की अनुमति के बिना इस परिसर के एक हिस्से को किराये पर दे दिया था।

4. बेदखली के आदेश को चुनौती देने के लिए अधिनियम की धारा 38 के तहत एक वैधानिक अपील दायर की गई थी, जो अपीलीय न्यायालय के समक्ष अंतिम सुनवाई के लिए लंबित है। प्रासंगिक रूप से, अपील दर्ज करते समय और बेदखली के आदेश पर रोक लगाते समय, अपीलीय न्यायालय ने 12 अप्रैल, 2001 के अपने आदेश द्वारा, किरायेदार को अन्य बातों के साथ-साथ न्यायालय में प्रति माह 15,000/- रुपये (केवल पन्द्रह हजार रुपये) की राशि जमा करने का निर्देश दिया था। यह जमा राशि बेदखली

के आदेश की तारीख से पट्टे पर दिए गए परिसर के निरंतर उपयोग और अधिभोग शुल्क के लिए थी।

यह रोक अनुबंध दर पर किराये के अतिरिक्त उक्त राशि जमा कराने की शर्त पर लगाई गई थी - जिसे सीधे मकान मालिक को देना था। अपील स्वीकार करने/आक्षेपित आदेशों पर रोक लगाने के लिए शर्त लगाने को किरायेदार ने इस न्यायालय में सि.वि. (मु) संख्या 280/2001 के तहत चुनौती दी थी। इस न्यायालय ने 12 फरवरी, 2002 के अपने आदेश द्वारा जमा राशि की शर्त को अपास्त कर दिया तथा निर्देश दिया कि किरायेदार परिसर में रह सकता है बशर्ते कि वह मकान मालिक को अनुबंध दर पर किराया अदा करे।

5. जमा की शर्त को अपास्त करने के आदेश से व्यथित होकर, मकान मालिक ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अनुमति मांगते हुए एक याचिका दायर की, जिसे अनुमति दे दी गई। परिणामी सिविल अपील संख्या 7988/2004 में दिनांक 10 दिसम्बर, 2004 के निर्णय ने - जिसका लोकस क्लासिकस पूर्व में उल्लेख किया गया था - इस न्यायालय के दिनांक 12 फरवरी, 2002 के निर्णय को अपास्त कर दिया तथा इस प्रकार बेदखली के आदेश पर रोक लगाने के लिए प्रति माह 15,000/- (पंद्रह हजार रुपये मात्र) जमा कराने की शर्त को बहाल कर दिया। जबकि

उच्चतम न्यायालय के तर्क पर अधिक उपयुक्त समय पर विस्तार से चर्चा की जाएगी, यहां यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह माना कि *विलयन के सिद्धांत का यह प्रभाव नहीं है कि किरायेदारी की समाप्ति की तिथि को केवल इसलिए स्थगित कर दिया जाए क्योंकि बेदखली की डिक्री बाद की तिथि पर उच्चतर फोरम द्वारा पारित डिक्री में विलय हो गया है।*

6. इसके बाद, 2007 में, किरायेदार ने अपील में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 ("**कोड**") के आदेश नियम 17 के तहत एक आवेदन दायर करने की मांग की। 31 जनवरी, 2007 को मकान मालिक को नोटिस जारी करते समय अपीलीय न्यायालय ने स्वप्रेरणा से किरायेदार को 15,000 रुपये (पंद्रह हजार रुपये मात्र) के स्थान पर 25,000 रुपये (पच्चीस हजार रुपये मात्र) मासिक राशि जमा करने का निर्देश दिया। अपीलीय न्यायालय ने 31 जनवरी, 2007 को आदेश पारित करते समय यह टिप्पणी की थी कि उच्चतम न्यायालय के आदेश तथा सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि को देखते हुए जमा की जाने वाली राशि में वृद्धि की जानी चाहिए। यह सच है कि इस आदेश को किरायेदार द्वारा चुनौती नहीं दी गई है। इसके बाद, 11 अक्टूबर, 2007 के आदेश द्वारा, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने मामले को विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया तथा उसे निर्देश दिया कि वह उस विशेष मामले के संबंध में अपने निष्कर्ष

प्रस्तुत करे, जिस पर दोनों पक्षों के बीच विवाद था। यद्यपि इसके विवरण वर्तमान विवाद के लिए अप्रासंगिक हैं, तथापि 14 जुलाई, 2010 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा इस मुद्दे पर अपना निष्कर्ष लौटा दिया और अपीलीय न्यायालय ने इसके बाद अपील पर कार्यवाही शुरू की।

7. 5 नवंबर, 2011 को मकान मालिक ने संहिता की धारा 151 के सहपठित आदेश नियम 5 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें किरायेदार को यह निर्देश देने की मांग की गई कि वह (क) शोरूम के आधे हिस्से के प्रति वर्ग फुट 370 रुपये (केवल तीन सौ सत्तर रुपये) और (ख) गैरेज के लिए 1,00,000 रुपये (केवल एक लाख रुपये) आवेदन की तारीख से अपील के निपटान तक जमा कराए। मकान मालिक ने तर्क दिया कि यह न्याय के हित में है कि जमा की जाने वाली राशि को प्रार्थना के अनुसार बढ़ाया जाए। यह प्रस्तुत किया गया कि पट्टे पर दिए गए परिसर का मूल्य पिछले कुछ वर्षों में बहुत बढ़ गया है और किरायेदार मात्र 25,000/- रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) की मामूली राशि जमा करके इसका लाभ ले रहा है। पट्टे पर दिए गए परिसर की बाजार दर और साथ ही इसमें लगातार वृद्धि दोनों को दिखाने के लिए समान रूप से रखे गए परिसर से होने वाली आय पर भरोसा करने की मांग की गई थी।

8. किरायेदार ने आवेदन का विरोध किया था और तर्क दिया था कि (क) 12 अप्रैल, 2001 का आदेश जिसके तहत किरायेदार को 15,000 रुपये (केवल पंद्रह हजार रुपये) जमा करने का निर्देश दिया गया था, उसे उच्चतम न्यायालय के आदेश में विलय कर दिया गया था और इसलिए अपीलीय न्यायालय द्वारा इसे संशोधित नहीं किया जा सकता है; (ख) यहां तक कि 31 जनवरी, 2007 का आदेश, जिसके तहत राशि को 15,000/- रुपये (पंद्रह हजार रुपये मात्र) से बढ़ाकर 25,000/- रुपये (पच्चीस हजार रुपये मात्र) कर दिया गया था, क्षेत्राधिकार से बाहर है; (ग) समान रूप से स्थित परिसर से आय दर्शाने वाले दस्तावेज अप्रासंगिक हैं क्योंकि वे कपटपूर्ण हैं तथा किरायेदार पर बाध्यकारी नहीं हैं; (घ) अधिनियम की धारा 6क के प्रावधानों के विपरीत मकान मालिक द्वारा किराए में एकतरफा वृद्धि नहीं की जा सकती; (ङ) मकान मालिक ने पहले भी इसी तरह का आवेदन दायर किया था और इसलिए उसे वर्तमान आवेदन दायर करने से रोक दिया गया है; और (च) संहिता की प्रथम अनुसूची के आदेश नियम 5 का उद्देश्य पक्षकारों के हितों को सुरक्षित करना है, इसलिए जमा राशि में वृद्धि की मांग नहीं की जा सकती।

9. पहले आक्षेपित आदेश में अपीलीय न्यायालय ने माना कि आवेदन धारणीय है, लेकिन निर्देश दिया कि पट्टे पर दिए गए परिसर के बाजार

मूल्य की गणना के लिए शपथ-पत्र द्वारा समर्थित उचित दस्तावेज दाखिल किए जाएं। इसमें तर्क दिया गया:

9.1. अपील में चुनौती दिए गए आदेशों के आधार पर विलयन का सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं होता है; यह केवल वहीं लागू होगा जब वरिष्ठ न्यायालय ने उस मुद्दे पर विचार किया हो जिस पर निचले न्यायालय ने निर्णय दिया है।

9.2. उच्चतम न्यायालय का आदेश केवल इस मुद्दे पर विचार करता है कि क्या अपीलीय न्यायालय को अपील स्वीकार करते समय जमा राशि की शर्त लगाने का क्षेत्राधिकार है; इसमें जमा की मात्रा के मुद्दे पर विचार नहीं किया गया।

9.3. इसलिए, जमा की मात्रा के संबंध में अपीलीय न्यायालय का आदेश उच्चतम न्यायालय के आदेश के साथ विलय नहीं होता है।

9.4. अधिनियम की धारा 6क से संबंधित निर्णय वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं होंगे, क्योंकि मकान मालिक ने वाद दायर करने से पहले एकतरफा किराया नहीं बढ़ाया है।

9.5. अभिलेख से पता चलता है कि मकान मालिक ने पहले कभी ऐसी या समान राहत की मांग करते हुए कोई आवेदन दायर नहीं किया है।

9.6. इसमें शामिल मुद्दा आवेदन की स्वीकार्यता का नहीं है, बल्कि जमा की जाने वाली राशि को बढ़ाने की न्यायालय की शक्ति का है।

9.7. ध्रुव गोयल बनाम आनंद प्रकाश गोयल, 3 में इस न्यायालय के फैसले से यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय के पास जमा की जाने वाली राशि बढ़ाने की शक्ति है; इसका कारण उच्चतम न्यायालय के आदेश में ही पाया जा सकता है।

9.8. यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि संहिता के आदेश नियम 5 का उद्देश्य पक्षकारों के हितों को सुरक्षित करना है, तथापि पक्षकारों के हित समय के साथ बदल सकते हैं।

9.9. किरायेदार ने बेदखली के आदेश के बाद से संपत्ति का उपयोग, प्रथम छः वर्षों के लिए 15,000/- (पन्द्रह हजार रूपये मात्र) रूपये प्रतिमास तथा आगामी छः वर्षों के लिए 25,000/- (पच्चीस हजार रूपये मात्र) रूपये प्रतिमास की नाममात्र लागत पर किया है, जो स्वीकृत किराये लगभग 300/- (तीन सौ रूपये मात्र) के अतिरिक्त है।

9.10. समय बीतने के कारण संपत्ति का मूल्य निस्संदेह कई गुना बढ़ गया होगा।

9.11. उपयोग और अधिभोग शुल्क जमा करने की शर्त लगाने के लिए अपीलीय न्यायालय की शक्ति को बरकरार रखते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत और उद्देश्य, उपयोग और अधिभोग शुल्क में वृद्धि के लिए उस सीमा तक लागू होते हैं।

9.12. इसलिए प्रतिभूति जमा की राशि बढ़ाने की मांग वाला आवेदन धारणीय है।

10. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पहले आक्षेपित आदेश में यह माना गया था कि जमा राशि में वृद्धि की मांग करने वाला आवेदन धारणीय है, तथा दोनों पक्षकारगण को निर्देश दिया गया था कि वे शपथ-पत्रों द्वारा समर्थित उचित दस्तावेज दाखिल करें, ताकि आम तौर पर आसपास के क्षेत्र में किराए की प्रचलित दर दर्शाई जा सके। इसने टिप्पणी की कि मकान मालिक ने केवल दस्तावेज और अन्य अनुबंध दाखिल किए हैं जो उसने अन्य पक्षकारगण के साथ किए थे, लेकिन इसके समर्थन में कोई शपथपत्र दाखिल नहीं किया है। न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि किरायेदार ने इस संबंध में कोई दस्तावेज या शपथ पत्र दायर नहीं किया है। इन परिस्थितियों में, आगे की सामग्री दाखिल करने के निर्देश जारी किए गए। इसके बाद, मकान मालिक ने पहले से ही दायर किए गए अनुबंध के अलावा एक शपथ पत्र दायर किया था और किरायेदार ने एक शपथ पत्र दायर किया था, लेकिन कोई दस्तावेज दायर नहीं किया था।

इसके बाद, जमा राशि को कितनी मात्रा में बढ़ाया जाना चाहिए, इस मुद्दे पर पक्षकारगण को सुना गया।

11. किरायेदार ने आवेदन की धारणीयता तथा इसमें वृद्धि की आवश्यकता के विरुद्ध तर्क दिया। इस स्तर पर अपीलीय न्यायालय द्वारा दोनों मुद्दों पर विचार करने से इनकार कर दिया गया क्योंकि पहले आक्षेपित आदेश में पहले ही इन पर विस्तार से विचार किया जा चुका था। मकान मालिक ने अपने शपथ पत्र में इसकी लोकेशन के साथ-साथ आस-पास उपलब्ध सुविधाओं के मद्देनजर पट्टे पर दिए गए परिसर की सापेक्ष योग्यता दर्शाई थी। उसने उसी भवन में अन्य व्यापारियों के साथ किए गए अनुबंधों को अभिलेख में लाया था, तथा पूर्व में उल्लिखित शपथ पत्र में उचित कथनों के साथ उनका समर्थन किया था। अनुबंधों के आधार पर मकान मालिक ने तर्क दिया कि उस भवन में अन्य संपत्तियों से उसे 279/- रुपये (दो सौ उनहत्तर रुपये मात्र) और 420/- रुपये (चार सौ बीस रुपये मात्र) प्रति वर्ग फुट प्रति माह की दर से आय हो रही है।मकान मालिक ने आगे तर्क दिया कि गैराज से प्रति माह 1,00,000/- (केवल एक लाख रुपये) की कमाई आ सकती है। किरायेदार ने उक्त अनुबंधों पर भरोसा करने का विरोध किया और तर्क दिया कि ये अनुबंध पक्षकारगण के बीच विवाद उत्पन्न होने के बाद किए गए हैं और ये मकान मालिक द्वारा संपत्ति के उच्च मूल्य का भ्रम पैदा करने के लिए

तैयार किए गए झूठे/सांठगांठ वाले दस्तावेज हैं। किरायेदार ने आगे तर्क दिया कि चूंकि उक्त अनुबंधों के तहत परिसर के किरायेदारों को प्रदान की गई/उपलब्ध बुनियादी ढांचे की स्थिति और सुविधाओं की जानकारी नहीं है, इसलिए पट्टे पर दिए गए परिसर के बाजार मूल्य का पता लगाने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता है।

12. दूसरे आक्षेपित आदेश में मकान मालिक द्वारा उसी इमारत में अन्य व्यापारियों के साथ किए गए अनुबंधों की अस्वीकार्यता के बारे में किरायेदार के तर्क को खारिज कर दिया गया। इसमें टिप्पणी की गई कि यह कल्पना से परे है कि कोई व्यावसायिक घराना केवल मकान मालिक के कहने पर बढ़े हुए किराए के मूल्य के साथ पंजीकृत पट्टा विलेख में प्रवेश करेगा और इसके विपरीत तर्क कोई विश्वास पैदा नहीं करता है। न्यायालय ने आगे यह भी टिप्पणी कि तुलना के उद्देश्य से यह परिसर पट्टे पर दिए गए परिसर के सबसे निकट उपलब्ध परिसर है, तथा एक ही भवन में स्थित है। इसने टिप्पणी की कि किरायेदार को यह तर्क देते हुए नहीं सुना जा सकता है कि उक्त परिसर में प्रदान की गई/उपलब्ध बुनियादी ढांचे की स्थिति और सुविधाओं का विवरण उसे ज्ञात नहीं है, यह देखते हुए कि वे एक ही भवन में स्थित हैं। न्यायालय ने टिप्पणी की कि यदि किरायेदार यह तर्क देना चाहता था कि इन परिसरों में उपलब्ध कराई गई बुनियादी संरचना या सुविधाएं किरायेदार को उपलब्ध

कराई गई सुविधाओं से किसी भी तरह से भिन्न हैं, तो किरायेदार को इसका पता लगाने के लिए कदम उठाने चाहिए थे और अपने शपथ पत्र में इसका उल्लेख करना चाहिए था। इसने विशेष रूप से पट्टे पर दिए गए परिसर के बाजार मूल्य के संबंध में किरायेदार की ओर से विवरण या सहायता के पूर्ण अभाव पर टिप्पणी की। न्यायालय ने टिप्पणी की कि किराएदार ने किसी भी मामले में इस आधार पर अनुबंधों पर आपत्ति नहीं की है कि परिसर अनुबंधों में उल्लिखित इकाई को किराए पर नहीं दिया गया है, या यह कि उक्त परिसर से चलाए जाने वाले व्यवसाय वास्तव में वहां से नहीं चलाए जा रहे हैं।

13. दूसरे आक्षेपित आदेश में टिप्पणी की गई कि मकान मालिक ने दर्शाया है कि पट्टे पर दिए गए परिसर से प्रति माह प्रति वर्ग फुट 279/- रुपये (दो सौ उनहत्तर रुपये मात्र) और 420/- रुपये (चार सौ बीस रुपये मात्र) की दर में आय प्राप्त होने की संभावना है। न्यायालय ने टिप्पणी की कि व्यापक दर तथा प्रदान की गई सुविधाओं के कारण भिन्नता की संभावना को देखते हुए, दोनों आंकड़ों में से कमतर को ही पट्टे पर दिए गए परिसर से प्राप्त होने वाली संभावित आय माना जाना चाहिए। न्यायालय ने इस तर्क कि इन गैरेजों से प्रत्येक माह 1,00,000/- (केवल एक लाख रुपये) की आय होने की संभावना है, को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इसका कोई साक्ष्य या सामग्री द्वारा समर्थन नहीं किया गया है। हालांकि,

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उनकी सुगम्यता और लोकेशन के कारण, उन्हें प्रति माह कम से कम 25,000 रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) मिलने की संभावना है। न्यायालय ने इस प्रस्तुति पर विचार किया कि मकान मालिक उच्चतम न्यायालय के हालिया निर्णयों के प्रवाह के आधार पर बाजार दर का केवल पचास प्रतिशत ही चाहता है। उपर्युक्त आधार पर, दूसरे आक्षेपित आदेश में किरायेदार को शोरूम और दो गैराजों के हिस्से के उपयोग और अधिभोग शुल्क के रूप में प्रति माह 1,60,000/- रुपये (केवल एक लाख साठ हजार रुपये) की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया।

14. आक्षेपित आदेशों की औचित्यता या अन्यथाता अब इस न्यायालय के समक्ष विवाद में है और इस न्यायालय ने इस पर विचार करने के लिए समय लिया। तथापि, यह न्यायालय सूर्या देवी राय बनाम राम चंद्र राय एवं अन्य4 में उच्चतम न्यायालय के कथन को ध्यान में रखता है, जहां इस मुद्दे पर विभिन्न प्राधिकारियों5 पर भरोसा करते हुए, जिसमें वरयाम सिंह बनाम अमरनाथ6 में उच्चतम न्यायालय का कथन भी शामिल है, उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 227 के तहत न्यायालय के पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के तहत अधीक्षण की शक्ति के अंधाधुंध प्रयोग के खिलाफ चेतावनी दी थी।

प्रासंगिक रूप से, इसके सारांश में, जिसे हाल ही में समीर सुरेश गुप्ता बनाम राहुल कुमार अग्रवाल के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था, इसने टिप्पणी की थी:8

> ***38.*** *इस तरह के मामले अक्सर उच्च न्यायालयों के समक्ष आते रहते हैं। हम अपने निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं, यहां तक कि दोहराव के जोखिम को उठाते हुए भी, तथा उसे नीचे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं:*
>
> *****
>
> *(4) संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग अधीनस्थ न्यायालयों को उनके क्षेत्राधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के लिए किया जाता है। जब किसी अधीनस्थ न्यायालय ने ऐसी अधिकारिता ग्रहण कर ली हो जो उसके पास नहीं है या वह ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा हो जो उसके पास है या अधिकारिता उपलब्ध होने पर भी न्यायालय द्वारा उसका प्रयोग ऐसे तरीके से किया जा रहा हो जो कानून द्वारा अनुमत नहीं है और जिसके कारण न्याय में असफलता या घोर अन्याय हुआ हो, तो उच्च न्यायालय अपनी पर्यवेक्षी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।*
>
> *(5) चाहे वह उत्प्रेषण रिट हो या पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग, इनमें से कोई भी तथ्य या कानून की मात्र त्रुटियों को सुधारने के लिए उपलब्ध नहीं है, जब तक कि निम्नलिखित आवश्यकताएं पूरी न हो जाएं: () कार्यवाही के दौरान त्रुटि स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो, जैसे कि यह स्पष्ट अज्ञानता या कानून के प्रावधानों की पूर्ण अवहेलना पर आधारित हो, और () इसके कारण गंभीर अन्याय या न्याय की घोर विफलता हुई है।*

(6) पेटेंट त्रुटि वह त्रुटि है जो स्वयं-स्पष्ट होती है, अर्थात जिसे किसी भी लम्बे या जटिल तर्क या तर्क की लम्बी प्रक्रिया में शामिल हुए बिना भी समझा या प्रदर्शित किया जा सकता है। जहां दो निष्कर्ष यथोचित रूप से संभव हों और अधीनस्थ न्यायालय ने एक दृष्टिकोण अपनाने का फैसला किया हो, वहां त्रुटि को गंभीर या प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता।

(7) उत्प्रेषण रिट जारी करने की शक्ति और पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग संयम से तथा केवल उचित मामलों में किया जाना चाहिए, जहां उच्च न्यायालय की न्यायिक विवेक उसे ऐसा करने के लिए निर्देशित करती हो, अन्यथा न्याय में घोर विफलता या गंभीर अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। जब किसी अधीनस्थ न्यायालय में किसी वाद या कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान उपर्युक्त दोनों में से किसी क्षेत्राधिकार का आह्वान किया जाता है, तो सावधानी, सतर्कता और एहतियात का प्रयोग किया जाना आवश्यक है, और यद्यपि त्रुटि में सुधार की आवश्यकता है, तथापि उसे उसके विरुद्ध प्रस्तुत अपील या पुनरीक्षण में कार्यवाही के समापन पर सुधारा जा सकता है और उच्च न्यायालय के उत्प्रेषण या पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए याचिका पर विचार करने से वाद या कार्यवाही के सुचारू प्रवाह और/या शीघ्र निपटान में बाधा उत्पन्न होगी। उच्च न्यायालय उस स्थिति में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक हो सकता है, जहां त्रुटि ऐसी हो कि यदि उसे उसी क्षण ठीक न किया जाए, तो बाद में उसे ठीक करना संभव न हो और हस्तक्षेप करने से इनकार करने पर न्याय का उपहास हो जाए या जहां ऐसे इनकार के परिणामस्वरूप वाद लम्बा खिंच जाए।

(8) उच्च न्यायालय उत्प्रेषण या पर्यवेक्षी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए स्वयं को अपील न्यायालय में परिवर्तित नहीं करेगा

और साक्ष्यों के पुनर्विवेचन या मूल्यांकन में लिप्त नहीं होगा, या निष्कर्ष निकालने में त्रुटियों को ठीक नहीं करेगा, या केवल औपचारिक या तकनीकी प्रकृति की त्रुटियों को ठीक नहीं करेगा।

*****

(जोर दिया गया)

15. उच्चतम न्यायालय ने निष्कर्ष में स्पष्ट किया कि यह व्यादेश किसी भी मामले में अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से नहीं है, बल्कि इसका संयम से प्रयोग करने तथा तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता वाली महत्वपूर्ण त्रुटियों को सुधारने के लिए है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

39. *यद्यपि हमने व्यापक सिद्धांत और कार्य नियम निर्धारित करने का प्रयास किया है, फिर भी तथ्य यह है कि संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के मापदंडों को किसी निश्चित फार्मूले या कठोर नियमों में नहीं बांधा जा सकता। कई बार उच्च न्यायालय को दुविधा का सामना करना पड़ता है। यदि यह लंबित कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करता है तो कार्यवाही समाप्त होने में विलंब होना निश्चित है। यदि वह हस्तक्षेप नहीं करता है, तो उस क्षण की त्रुटि को सुधार से छूट मिल सकती है। किसी मामले के तथ्य और परिस्थितियां उच्च न्यायालय के लिए आत्म-संयम बरतना और हस्तक्षेप न करना अधिक उपयुक्त बना सकती हैं, क्योंकि यद्यपि अधिकारिता की त्रुटि हुई है, फिर भी बाद में उसका ध्यान रखा जा सकता है और उसे ठीक किया जा सकता है तथा यदि कोई गलती हुई है, तो उसे ठीक किया जा सकता है और अपील या पुनरीक्षण में समायोजित अधिकार और इक्विटी को कार्यवाही के समापन पर प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां*

"सही समय पर उठाया गया छोटा कदम भविष्य की बडी समस्याओं से बचाता है। अंत में, हम यह कहकर निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शक्ति तो है, लेकिन इसका प्रयोग विवेकाधीन है, जो पूरी तरह से न्यायिक विवेक के निर्देशों द्वारा नियंत्रित होगा, जो न्यायाधीश के न्यायिक अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान से समृद्ध होगा।

(जोर दिया गया)

16. इस प्रकार, पक्षकारगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्तागण की सहमति से, इस स्तर पर मामले की अंतिम सुनवाई की गई है, लेकिन केवल यह पता लगाने के लिए कि क्या आक्षेपित आदेश इस प्रकृति के हैं कि अधीक्षण की इस विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करना उचित है, जिसके हल्के प्रयोग के खिलाफ उच्चतम न्यायालय ने लगातार चेतावनी दी है।

अधिनियम की धारा 6क के संबंध में

17. किरायेदार की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रवि गुप्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान मामला वास्तव में अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप करने योग्य है। उन्होंने तर्क दिया कि मकान मालिक द्वारा किया गया आवेदन, पट्टे पर दिए गए परिसर के लिए देय किराया बढ़ाने के लिए मकान मालिक द्वारा एकतरफा प्रयास से कम नहीं है - जो कि कानून द्वारा निषिद्ध है। उन्होंने तर्क दिया कि अधिनियम के प्रावधान, विशेष रूप से धारा 6 और 6क, मकान मालिक को परिसर के लिए देय

किराए में एकतरफा वृद्धि करने से वंचित करते हैं। उन्होंने तर्क दिया कि एक कठिन शर्त - जो कि आक्षेपित आदेशों द्वारा लगाई गई शर्त के लिए प्रयुक्त की गई अभिव्यक्ति है - जो अपील के अपने वैधानिक अधिकार का प्रयोग कर रहे किरायेदार पर नहीं लगाई जा सकती है। उन्होंने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 6क के तहत किराया वृद्धि के लिए निर्धारित सिद्धांतों का आक्षेपित आदेशों में पूरी तरह अनुसरण किया गया है। उनका तर्क है कि कानून के आदेश की परवाह किए बिना, जमा की जाने वाली राशि के रूप में पूरी तरह से एक मनमाना आंकड़ा निर्दिष्ट किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि केवल इस आधार पर, आक्षेपित आदेश कानून के दायरे से बाहर होने के कारण अपास्त किये जाने योग्य हैं। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में नियास अहमद खान बनाम महमूद रहमत उल्लाह खान एवं अन्य 10 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

18. इस न्यायालय की राय में, इस तर्क का आधार कुछ हद तक गलत है। यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि *आत्मा राम प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड,11* में यह निर्णय नहीं था कि न्यायालय बेदखली के आदेश पर रोक लगाने से पहले संविदागत या मानक किराये से अधिक किराये के भुगतान का निर्देश दे सकता है। इसके विपरीत, उच्चतम न्यायालय का निर्णय था कि चूंकि बेदखली के

आदेश के निर्णय के साथ ही किरायेदारी समाप्त हो जाती है, इसलिए अपील के लंबित रहने के दौरान उपयोग और अधिभोग शुल्क के रूप में एक उचित राशि जमा करने का निर्देश दिया जा सकता है। ऐसे शुल्कों के निर्धारण में अधिनियम की धारा 6 और 6क के प्रावधान लागू नहीं होंगे। बल्कि, यह कहना पूरी तरह गलत नहीं होगा कि अधिनियम का कोई भी प्रावधान पक्षकारगण के बीच संबंधों को नियंत्रित करने के लिए लागू नहीं होगा, क्योंकि बेदखली का आदेश पारित होने के साथ ही किरायेदारी समाप्त हो जाती है। इसे देखते हुए, किरायेदार की ओर से वर्तमान तर्क शायद ही न्यायालय के मन में कोई विश्वास पैदा करता है।

19. *नियास अहमद खान बनाम महमूद रहमत उल्लाह खान एवं अन्य,13* में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि उस मामले के तथ्य वर्तमान मामले से बिल्कुल विपरीत हैं। उक्त मामले में, मकान मालिक ने किरायेदार के खिलाफ उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21 (1) (क) के तहत कार्यवाही शुरू की थी, लेकिन इसमें वह असफल रहा। यहां तक कि अपील में भी मकान मालिक असफल रहा और उसके बाद यह मामला भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय में ले जाया गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने रिट याचिका का निर्णय लंबित रहने तक किरायेदार द्वारा मकान

मालिक को किराए के रूप में 12,050/- रुपये (बारह हजार पचास रुपये मात्र) का भुगतान करने का निर्देश दिया था। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, तथा यह देखते हुए कि उसमें किरायेदार के विरुद्ध बेदखली का कोई आदेश नहीं था, उच्चतम न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करना उचित समझा। वर्तमान मामले में यह बात लागू नहीं होगी। *आत्मा राम प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड,14 और नियास अहमद खान बनाम महमूद रहमत उल्लाह खान एवं अन्य,15* के बीच स्पष्ट मतभेद को स्पष्ट करने के लिए बुलाई गई उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने भी इसी तरह की राय दी।

आवेदन के पूर्व न्याय और धारणीयता के संबंध में

20. इसके बाद श्री गुप्ता ने तर्क दिया कि आवेदन स्वयं में धारणीय नहीं है। उन्होंने यह तर्क इस आधार पर दिया है कि किरायेदार को शर्तों पर रखने के मुद्दे पर अपीलीय न्यायालय द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका था और निर्णय लिया जा चुका था, जब उसने आदेश नियम 5 के तहत आवेदन पर नोटिस जारी किया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय द्वारा 12 अप्रैल, 2001 को पारित आदेश का कोई पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि यहां तक कि 31 जनवरी, 2007 का आदेश, जिसके तहत 12 अप्रैल, 2001 को 15,000/- रुपये

(केवल पंद्रह हजार रुपये) प्रति माह की राशि तय की गई थी, क्षेत्राधिकार से बाहर था, लेकिन किरायेदार ने इस उम्मीद और विश्वास के साथ इसका पालन किया था कि अपील पर जल्द ही अंतिम रूप से सुनवाई होगी और उसका निपटान होगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय, एक बार जब आदेश नियम 5 के तहत जमा की जाने वाली राशि के मुद्दे पर विचार कर लेता है और आदेश पारित कर देता है, तो वह इस मुद्दे को पुनः शुरू नहीं कर सकता, चाहे वह स्वयं के प्रस्ताव पर हो या किसी पक्ष द्वारा आवेदन पर। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ऐसा इस तथ्य के मद्देनजर किया गया है कि आदेश नियम 5 का उद्देश्य पक्षकारगण के हितों की रक्षा करना है, न कि किसी एक पक्ष के हितों को बढ़ावा देकर दूसरे पक्ष को नुकसान पहुंचाना। उन्होंने तर्क दिया कि न तो आवेदन धारणीय था और न ही 12 अप्रैल, 2001 के आदेश में निर्दिष्ट जमा राशि बढ़ाने का निर्देश देने वाला आदेश धारणीय था। उन्होंने अंत में तर्क दिया कि क्रॉम्पटन ग्रीव्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 17 और एंडरसन राइट एंड कंपनी बनाम अमर नाथ रॉय एंड अन्य, 18 में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करना, यह मानने के लिए कि न्यायिक प्रवृत्ति इस हद तक बदल गई है कि बाजार दर को भी उपयोगकर्ता शुल्क के रूप में लगाया जा सकता है, गलत था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि चूंकि ये निर्णय उन कारणों को नहीं दिखाते हैं कि

अंतिम आदेश क्यों पारित किया गया था, उन्हें आधिकारिक निर्णय नहीं माना जा सकता है।

21. जवाब में, मकान मालिक की ओर से अग्रिम सूचना पर उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे.पी. सेंघ ने तर्क दिया कि आवेदन वास्तव में धारणीय है और आक्षेपित आदेशों में कोई त्रुटि नहीं है। उन्होंने *आत्मा राम प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड,* 19 में उच्चतम न्यायालय के कथन पर व्यापक रूप से भरोसा किया और तर्क दिया कि बेदखली के आदेश के बाद संपत्ति में बने रहने की इच्छा रखने वाले किरायेदार के दायित्व - उपयोगकर्ता शुल्क का भुगतान करने का मुद्दा - अब अनिर्णीत विषय नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि बेदखली के आदेश के बाद भी जो किरायेदार संपत्ति में बना रहता है, वह मकान मालिक की बर्दाश्त में रहता है और उसे अनुबंधित किराये की दर पर परिसर का लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उन्होंने *क्रॉम्पटन ग्रीव्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 20 और एंडरसन राइट एंड कंपनी बनाम अमर नाथ रॉय एंड अन्य, 21* के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि आत्मा राम प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड, 22 में निर्धारित सिद्धांत की पुष्टि अन्य राज्यों में भी किराया नियंत्रण कानूनों के संबंध में बाद के निर्णयों द्वारा की गई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ये निर्णय स्पष्ट रूप से

बेदखली के आदेश पर रोक लगाने के लिए शर्तें लगाने की न्यायालय की शक्ति तथा भुगतान किए जाने वाले किराए के संबंध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पक्षों द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर विचार करने की न्यायालय की शक्ति को साबित करते हैं। इसके बाद उन्होंने उदाहरण के तौर पर मोहम्मद अहमद एवं अन्य बनाम आत्मा राम चौहान एवं अन्य, 23 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की ओर ध्यान आकर्षित किया जहां उच्चतम न्यायालय ने मकान मालिक के आवेदन पर देय अंतरिम उपयोगकर्ता शुल्क में वृद्धि को बरकरार रखा था।

22. 12 अप्रैल, 2001 के आदेश की समीक्षा करने की अपीलीय न्यायालय की शक्ति के बारे में किरायेदार के तर्क वर्तमान परिस्थितियों में अप्रासंगिक हैं। अपीलीय न्यायालय ने संहिता के आदेश के साथ पठित धारा 114 के तहत आक्षेपित आदेश पारित नहीं किए हैं। न ही अपीलीय न्यायालय ने आक्षेपित आदेशों द्वारा पहले के आदेश का पुनर्विलोकन करने का दावा किया है। किरायेदार के तर्क के मूल में पूर्व न्याय का सिद्धांत है। सिद्धांत की सीमाएं संहिता की धारा 11 के दायरे से कहीं अधिक हैं, यह एक सुस्थापित सिद्धांत है, जैसा कि एस.पीएल. नारायणन चेट्टियार बनाम एम. एआर. अन्नामलाई चेट्टियार24 मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय से दिखाई देता है।यह भी विधि में निर्विवाद स्थिति है कि पूर्व न्याय का सिद्धांत विभिन्न चरणों

में एक ही कार्यवाही पर लागू होगा।25 हालाँकि, क्या इस व्यापक दायरे को यह तर्क देने के लिए बढ़ाया जा सकता है कि एक बार प्रतिभूति और/या जमा की राशि आदेश नियम 5 के तहत निर्धारित की गई है, इसे बाद में संशोधित नहीं किया जा सकता है, यह मुद्दा है।

23. यद्यपि *मोहम्मद अहमद एवं अन्य बनाम आत्मा राम चौहान एवं अन्य26* में उच्चतम न्यायालय का निर्णय प्रथम दृष्टया इस मुद्दे का उत्तर मकान मालिक के पक्ष में देता प्रतीत होता है, फिर भी दो कारणों से उक्त निर्णय के आधार पर वर्तमान मुद्दे पर निर्णय देना पूर्णतः उचित नहीं होगा। सबसे पहले, आदेश नियम 5 के तहत आदेशों के लिए पूर्व न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता का मुद्दा सीधे तौर पर मुद्दा नहीं था; ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें केवल इस मुद्दे पर विचार किया गया है कि क्या आदेश नियम 5 के तहत जमा राशि में वृद्धि उचित थी। दूसरा, निर्णय से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय ने कार्यवाही की स्थिरता तथा जमा राशि बढ़ाने के न्यायालय के अधिकार के संबंध में किरायेदार द्वारा दी गई रियायत पर कार्यवाही की है, तथा उच्चतम न्यायालय ने इसी बात को इस संबंध में पूर्व उदाहरणों या कानून पर विचार न करने का कारण बताया है।27 दूसरे शब्दों में, अपने विशिष्ट तथ्यों के आधार पर निर्णय लिए जाने तथा मुद्दे पर विचार न किए जाने के कारण, इस निर्णय को संहिता के आदेश नियम 5 के अंतर्गत पारित आदेशों पर पूर्व

न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता के मुद्दे पर बाध्यकारी उदाहरण के रूप में नहीं माना जा सकता है।

24. इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अपीलीय न्यायालय को वास्तव में आक्षेपित आदेशों की प्रकृति में आदेश पारित करने से पूर्व न्याय द्वारा रोक दिया गया है। यह सुस्थापित है कि विधि के हितकारी सिद्धांत के रूप में 'पूर्व न्याय' को लागू किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायिक आदेशों में अंतिमता की भावना जुड़ी हुई है। दरअसल, यह तीन अकाट्य सिद्धांतों पर आधारित है, जो दोनों ही निजी कानून के हैं: *(क) निमो डेबेट बिस वेक्सारी प्रो ऊना एट ईडेम कॉसा, 28 और लोक कानून: (ख) रेस ज्यूडिकाटा प्रो वेरिटेट एक्सीपिटुर29 और इंटरेस्ट रिपब्लिका यूटी सिट फिनिस लिटियम.30* हालाँकि, इस इप्से डिक्सिट को हर आदेश पर लागू करना नियम के मूल उद्देश्य के विपरीत होगा। एक नियम, जिसका मूल स्वभाव ही न्यायिक आदेशों को अंतिम रूप देना है, को अंतरिम व्यवस्थाओं/आदेशों पर हल्के में लागू नहीं किया जाना चाहिए।

25. सभी अंतर्वर्ती आदेशों को पूर्व न्याय की कठोरता के अधीन नहीं होना चाहिए, यह न केवल न्याय प्रशासन में सुविधा का सिद्धांत है, बल्कि यह एक दीर्घकालिक, सुस्थापित तथा न्यायिक और विधायी रूप से मान्यता प्राप्त कानून का नियम भी है। इसका आधार यह है कि अंतर्वर्ती आदेश,

जैसा कि अर्जुन सिंह बनाम मोहिन्द्र कुमार एवं अन्य, 31 में उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्यता दी गई है, यथास्थिति बनाए रखने या न्यायिक प्रक्रिया में देरी होने तक संपत्ति को संरक्षित रखने या वाद का न्यायसंगत, सुचारू, व्यवस्थित और शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के लिए भी तैयार किए जा सकते हैं।

26. ये आदेश पूर्व न्याय के सिद्धांत के अधीन नहीं हो सकते, क्योंकि ये अंतिम नहीं हैं तथा इनमें आगे भी संशोधन किया जा सकता है। इन आदेशों को निस्संदेह न्यायालय द्वारा ऐसे संशोधन के लिए पर्याप्त कारण के बिना संशोधित नहीं किया जाएगा - चाहे वह स्वप्रेरणा से हो या पक्षकार के आवेदन पर। हालाँकि, इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि यह रोक पूर्व न्याय के कारण है। दूसरा और/या क्रमिक आवेदन/आवेदनों को खारिज कर दिया जाएगा - जैसा कि अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्रा कुमार एवं अन्य32 में उच्चतम न्यायालय ने माना था कि यह या तो कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या उन्हीं कारणों से जिन पर पहले आवेदन किया गया था - पूर्व न्याय के समान कानून के सामान्य सिद्धांतों के आधार पर। 33

27. परिवर्तन के लिए उत्तरदायी अंतर्वर्ती आदेशों पर पूर्व न्याय की अनुपयुक्तता को विधानमंडल द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 13 के चौथे स्पष्टीकरण के पहले भाग में भी मान्यता दी गई थी, जिसमें पूर्व न्याय

का प्रावधान किया गया था। अंतर्वर्ती आदेशों पर नियम लागू करते समय जिस बात पर विचार करने की आवश्यकता है, वह स्पष्टीकरण से ही स्पष्ट हो जाता है - क्या न्यायालय को पुनर्विलोकन के लिए आवेदन के बावजूद आदेश को बदलने की शक्ति होगी। यह सिविल प्रक्रिया संहिता में विधायी मंशा का भी संकेत है, जिसके तहत न्यायालयों को कुछ अंतर्वर्ती आदेशों, अर्थात् जिन पर अंतिम निर्णय नहीं हुआ, को बदलने का अधिकार दिया गया है। इसी संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्रा कुमार एवं अन्य, 35 में सत्यध्यान घोषाल एवं अन्य बनाम देवराजिन देवी (श्रीमती) एवं अन्य, 36 में प्रतिपादित पूर्व न्याय के सिद्धांत पर चर्चा करने के पश्चात यह टिप्पणी की थी:

> *(11) हम इस बात से सहमत हैं कि सामान्यतः इन प्रस्तावों पर आपत्ति नहीं की जा सकती। यदि प्रथम निर्णय देने वाला न्यायालय वाद या अन्य कार्यवाही पर विचार करने के लिए सक्षम था, और इसलिए उसमें मुद्दा या मामले पर निर्णय करने की क्षमता थी, तो यह परिस्थिति कि वह अनन्य अधिकारिता वाला अधिकरण है या जिसके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती, बाद की कार्यवाहियों में उसके पूर्व न्याय होने के कारण स्वयं उस मुद्दे पर निष्कर्ष को नकारात्मक नहीं करेगी। इसी प्रकार, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में स्पष्ट रूप से दो मुकदमों के अस्तित्व की कल्पना की गई है और पहले मामले में प्राप्त निष्कर्ष को बाद के वाद में पूर्व न्याय माना गया है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि इसमें अंतर्निहित सिद्धांत उस ही वाद या कार्यवाही के क्रमिक चरणों में दिए गए निर्णयों के मामले में समान रूप से लागू होता है। <u>लेकिन जहां एक ही मुकदमे में कार्यवाही के विभिन्न</u>*

चरणों के मामले में पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागू किया जाता है, कार्यवाही की प्रकृति, जांच का दायरा जो विशेषण कानून निर्णय पर पहुंचने के लिए प्रदान करता है, साथ ही ऐसे निर्णय से संबंधित मामलों पर किए गए विशिष्ट प्रावधान कुछ ऐसे महत्वपूर्ण और प्रासंगिक कारक हैं जिन पर सिद्धांत को लागू करने से पहले विचार किया जाना चाहिए।
(जोर दिया गया)

28. आक्षेपित आदेशों में अर्जुन सिंह बनाम मोहिन्द्र कुमार एवं अन्य, 37 में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया गया है तथा कहा गया है कि आदेश नियम 5 के तहत आदेशों में बाद में संशोधन किया जा सकता है। न्यायालय ने टिप्पणी की कि आदेश नियम 5 के तहत आदेश पक्षकारगण के हितों की रक्षा के लिए पारित किया जाता है और समय बीतने के साथ पक्षकारगण के हित बदल सकते हैं। परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश में पूर्व में वर्णित तरीके से जमा राशि में वृद्धि की गई। इस न्यायालय को इसमें कोई अनुचितता नहीं दिखती जिसके कारण हस्तक्षेप किया जाए। यद्यपि आक्षेपित आदेशों में यह जांच नहीं की गई है कि आदेश नियम 5 के तहत जमा का आदेश पूर्व न्याय के सिद्धांत से मुक्त क्यों है, फिर भी वे जिस निष्कर्ष पर पहुंचे थे वह गलत नहीं था।

29. जिस डिक्री के विरुद्ध अपील की गई है उस पर रोक लगाने के समय जमा की शर्त लगाने वाला आदेश इक्विटी में एक आदेश है, कानून में नहीं।38 यह शर्त अपील के अंत में सफल पक्ष को उचित मुआवजा देने

के लिए लगाई जाती है। आदेश का उद्देश्य कार्यवाही को समाप्त करना या संबंधित किसी भी विवाद का निर्णय करना नहीं है। इसके विपरीत, यह केवल यह सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है कि विचारण न्यायालय में सफल पक्ष को डिक्री के लाभों से अनुचित रूप से वंचित न किया जाए; यह केवल इसलिए सुरक्षित है क्योंकि अपील के निर्णय में देरी होनी तय है। न तो रोक की अनुमति (या, परिणाम के रूप में, इससे इनकार), और न ही इसके लिए लगाई गई शर्तें पार्टी के बीच किसी भी मुद्दे को निर्णायक रूप से निर्धारित करने के लिए हैं।यहां तक कि जमा राशि की मात्रा का निर्धारण करने के लिए न्यायालय द्वारा की जाने वाली जांच भी संक्षिप्त प्रकृति की होती है - जो आमतौर पर पक्षों द्वारा दायर शपथ पत्रों और/या पक्षों के अधिवक्तागण के प्रस्तुतीकरण के आधार पर की जाती है। यह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए है कि शर्त को रोक के साथ ही लगाया जाना है; जब तक शर्तें पूरी नहीं हो जातीं, तब तक यह रोक लागू नहीं होगी। इसे देखते हुए, न्यायालय शायद ही गवाहों को बुलाकर विस्तृत विचारण शुरू कर सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि रोक की अनुमति शर्त के साथ दी जानी चाहिए या बिना शर्त के। न्यायालय की राय में, आदेश नियम 5 के अंतर्गत आदेश निःसंदेह एक अंतर्वर्ती आदेश है, जिस पर पूर्व न्याय की कठोरता लागू नहीं हो सकती।

30. यह न्यायालय उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए दो कारकों को आधार बनाता है; सबसे पहले, जहां तक यह पता लगाया जा सकता है, आदेश नियम 5 के तहत एक आदेश जारी करने का मुद्दा जो कि पूर्व न्याय के अधीन है, उस पर केवल एक निर्णय में ही विचार किया गया था, और दूसरा, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने उक्त मामले में अभिवाक खारिज कर दिया था। बाथिनी श्याम प्रसाद बनाम बाथिनी मस्तनम्मा एवं अन्य, 39 मामले में न्यायाधीश चंद्र रेड्डी (क्योंकि उस समय वे थे) ने उसी कानून की व्याख्या की थी जिसे उच्चतम न्यायालय ने दस वर्ष बाद अर्जुन सिंह बनाम मोहिंद्रा कुमार एवं अन्य, 40 में दोहराया था - कि न्यायालय के पास कुछ अंतर्वर्ती आदेशों को न्यायानुसार संशोधित करने की अंतर्निहित शक्ति है।41 उन्होंने इस दृष्टिकोण में यूसुफ आई.ए. लालजी एवं अन्य बनाम अब्दुल्लाभॉय लालजी एवं अन्य (सं. 1) में बॉम्बे उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति रंगनेकर के आदेश, 42 संहिता पर सर डी.एफ. मुल्ला की टिप्पणी,43 और संहिता पर श्री एस.सी. सरकार की टिप्पणी को आधार बनाया।44 उक्त टिप्पणियों में, अमीर हसन बनाम अहमद अली, 45 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर जॉन एज (जो उस समय थे) के निर्णय पर भरोसा किया गया था, जहां निष्पादन पर रोक लगाने वाले आदेश के पुनर्विलोकन करने की अपीलीय न्यायालय की शक्ति के मुद्दे पर विचार किया गया था। उक्त मामले में विद्वान न्यायाधीश ने माना कि रोक प्रदान करने वाले आदेश की वास्तव

में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 623 के अंतर्गत पुनर्विलोकन किया जा सकता है और इसके तहत दिए गए रोक आदेश को अपास्त कर दिया।

31. न्या. चन्द्र रेड्डी ने टिप्पणी कि जबकि छज्जू राम बनाम नेकी एवं अन्य, 48 में प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के संहिता के आदेश के नियम 1 पर दिए गए निर्णय में अमीर हसन बनाम अहमद अली49 में परिकल्पित प्रकृति के पुनर्विलोकन को रोक दिया गया है, विद्वान टिप्पणीकारों ने पहले कहा था कि फिर भी उन्होंने संहिता के आदेश नियम 5 के तहत परिवर्तन के लिए एक आदेश की स्वीकार्यता के प्रस्ताव के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय को एक प्राधिकारी के रूप में मानना उचित समझा है। इस पर भरोसा करते हुए और साथ ही यूसुफ आईए लालजी एवं अन्य बनाम अब्दुल्लाभॉय लालजी एवं अन्य (संख्या 1) में न्यायमूर्ति रंगनेकर की राय पर भरोसा करते हुए, न्यायमूर्ति चंद्र रेड्डी ने अमीर हसन बनाम अहमद अली51 में अंतिम आदेश से सहमति जताई और कहा कि आदेश नियम 5 के तहत आदेश निस्संदेह अंतिम आदेश नहीं है और इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

32. श्री गुप्ता ने राम सिंह एवं अन्य बनाम सोहिंदर सिंह बेदी, 52 में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय पर भरोसा करते हुए

तर्क दिया कि एक बार आदेश नियम 5 के तहत आवेदन किया जाता है और न्यायालय ने उस पर विचार करने के बाद कुछ शर्तें लगा दी हैं, जिनके अधीन अपील किए गए आदेश पर रोक लगाई जानी थी, एक और आवेदन दायर करके उसी मुद्दे को फिर से उठाने पर रोक है। उन्होंने तर्क दिया कि उक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जब अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपीलार्थी द्वारा कोई प्रतिभूति प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है, तो व्यथित प्रत्यर्थी के लिए उपयुक्त उपाय अपील ही है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि यह न्यायालय उक्त निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश की टिप्पणियों से भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचता है, तो न्यायिक अनुशासन यह निर्देश देता है कि इस मुद्दे पर निर्णय के लिए मामले को एक बड़ी पीठ को भेज दिया जाना चाहिए।

33. यद्यपि यह निर्विवाद है कि न्यायिक अनुशासन के तहत इस न्यायालय को इस मामले को बड़ी पीठ को सौंपना आवश्यक है, यदि वह विधि के उसी प्रश्न पर किसी समन्वय या बड़ी पीठ से अपनी राय में भिन्न राय रखता है, तथापि वर्तमान मामले में ऐसी किसी भी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं है। राम सिंह एवं अन्य बनाम मोहिंदर सिंह बेदी 53 का उक्त निर्णय, उसके समक्ष विधि के मुद्दे में, इस न्यायालय के समक्ष मामले से स्पष्ट रूप से भिन्न है।उक्त मामले में न्यायालय का ध्यान इस मुद्दे की ओर आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं थी कि क्या संहिता के

आदेश नियम 5 के तहत दिया गया आदेश पूर्व न्याय के अधीन है।उक्त मामला इस मुद्दे से संबंधित नहीं था कि क्या न्यायालय को संहिता के आदेश नियम 5 के तहत नई शर्तें लगाने से प्रतिबंधित किया गया है यदि उसके समक्ष नए तथ्य लाए जाते हैं; वास्तव में, इसके समक्ष कोई नया तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया।इसके विपरीत, उक्त मामले में दूसरी बार आदेश नियम 5 को लागू करने के लिए दिया गया एकमात्र कारण यह था कि न्यायालय ने अपीलार्थी को आक्षेपित आदेश पर रोक लगाने के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने की आवश्यकता न बताकर विधायी अधिदेश की अनदेखी की थी।54 जिस पक्षकार ने आदेश नियम 5 को लागू करने की मांग की थी, उसने तर्क दिया था कि उक्त प्रावधान के तहत प्रतिभूति प्रस्तुत करना एक अनिवार्य आवश्यकता थी और चूंकि प्रतिभूति प्रस्तुत करने की शर्त लगाए बिना रोक जारी की गई थी, इसलिए रोक जारी करने वाला आदेश उक्त प्रावधान के अधिदेश के विपरीत था। इन परिस्थितियों में विद्वान एकल न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि कानून के इन प्रश्नों को उठाने के लिए उचित कार्यवाही अपील के माध्यम से ही है।

34. इसके अलावा, न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि प्रतिभूति के बिना एकपक्षीय रोक आदेश की पुष्टि करने वाले आदेश की पुष्टि व्यथित पक्ष के अधिवक्ता की उपस्थिति में पारित आदेश द्वारा की गई

थी, जिन्होंने तब प्रतिभूति की कमी के संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया था।.56 अपने आदेश में न्यायालय ने कहा कि इस तथ्य के बावजूद कि पक्षकार का समुचित प्रतिनिधित्व किया गया था तथा रोक आदेश की पुष्टि के समय उसने प्रतिभूति की कमी पर कोई आपत्ति नहीं उठाई थी, पक्षकार ने उसके बाद साढ़े चार वर्ष की अवधि तक भी कोई आपत्ति नहीं उठाई।57 इन परिस्थितियों में आदेश नियम 5 के तहत दूसरा आवेदन खारिज कर दिया गया। किसी भी कल्पना से उक्त निर्णय को - उपरोक्त विशिष्ट कारकों को देखते हुए तथा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तथ्यों और तर्कों की प्रकृति को देखते हुए - वर्तमान मामले में विधि के उसी प्रश्न से संबंधित नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय को उक्त निर्णय को अपने समक्ष उपस्थित मुद्दों पर प्राधिकार मानने का कोई कारण नहीं दिखता।

35. इसके अलावा, यह न्यायालय बेदखली के आदेश के विरुद्ध रोक देते समय ऐसी शर्तें लगाने के मूल उद्देश्य को ध्यान में रखता है: सफल मकान मालिक के हितों की रक्षा करना तथा उसे मुआवजा प्रदान करना, जिसे बेदखली के आदेश के लाभ से वंचित किया जा रहा है। भले ही क्रॉम्पटन ग्रीव्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 58 और एंडरसन राइट एंड कंपनी बनाम अमर नाथ रॉय एंड अन्य, 59 के निर्णयों को प्राधिकार के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि उनमें अंतिम आदेश के लिए कारण नहीं बताए गए हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे मामलों में

न्यायिक प्रवृत्ति अपरिवर्तित रही है। महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम सुपरमैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, 60 मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि आत्मा राम प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम फेडरल मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड, 61 में प्रतिपादित सिद्धांत केवल अधिनियम के तहत कार्यवाही के संबंध में लागू होता है, अन्य राज्यों के विभिन्न किराया नियंत्रण कानूनों के तहत नहीं:62

> ***66.*** *किराया अधिनियम कुछ ऐतिहासिक* प्रसंगति *के प्रति सामाजिक-कानूनी प्रतिक्रिया थी, जैसे कि विश्व युद्ध के बाद आवास की तीव्र कमी, देश के विभाजन के बाद संघ के कई राज्यों में शरणार्थियों की भारी आमद और तीव्र शहरीकरण के परिणामस्वरूप देश के अंदर ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन। लगभग एक ही समय में घटित इन सभी* प्रसंगति *ने मांग और आपूर्ति के नियम को पूरी तरह से मकान मालिक के पक्ष में मोड़ दिया। इसलिए, समय की मांग यह थी कि किरायेदार की रक्षा की जाए, अन्यथा उसे पूरी तरह से मकान मालिक की दया पर छोड़ दिया जाता। विधानमंडल ने हस्तक्षेप किया और किराया अधिनियम लाया, जिसमें किराया बढ़ाने और किराए के परिसर से किरायेदार को बेदखल करने के आधारों को गंभीर रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया, इस प्रकार संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के तहत सामान्य कानून से परे मकान मालिक और किरायेदार के बीच संबंधों को विनियमित किया गया। इस संबंध में न्यायालय ने अधिक नहीं तो समान रूप से प्रतिक्रिया दी। <u>लेकिन लगभग तीन चौथाई सदी और तीन पीढ़ियों के बाद जब चीजें पहले जैसी नहीं रहीं और शहरी केंद्रों को नई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें से कुछ का मूल किराया अधिनियम में ही है, तो मकान मालिक और किरायेदार के</u>*

<u>बीच के रिश्ते के प्रति न्यायालय के रवैये पर पुनर्विचार करने और न्यायिक क्षेत्र में अधिक समान आधार प्रदान करने की आवश्यकता है।</u>

(जोर दिया गया)

36. आगे बढ़ते हुए, न्यायमूर्ति आफताब आलम, जो पीठ की ओर से बोल रहे थे, ने सत्यवती शर्मा (मृत) एलआरएस द्वारा बनाम भारत संघ एवं अन्य, 63 में न्यायमूर्ति जी.एस. सिंघवी की कुछ टिप्पणियों को दोहराया, विशेष रूप से लौकिक तर्कसंगतता के सिद्धांत के संबंध में, तथा उसी की पुष्टि करते हुए, उन्होंने कहा:64

> *71. <u>हम सत्यवती शर्मा [(2008) 5 एससीसी 287] में व्यक्त विचारों की पुष्टि करते हैं और मकान मालिक और किरायेदार के बीच संबंधों के लिए अधिक संतुलित और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देते हैं।</u> इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायालय को मकान मालिक के पक्ष में झुकना चाहिए, बल्कि इसका तात्पर्य केवल इतना है कि अब इस धारणा के लिए कोई स्थान नहीं है कि सभी किरायेदार, एक वर्ग के रूप में, विकट परिस्थितियों में हैं और उन्हें सभी परिस्थितियों में न्यायालय के संरक्षण की अत्यंत आवश्यकता है। (वर्तमान अपीलार्थी का मामला, जो मुम्बई के फोर्ट में स्थित एक भवन में 9000 वर्ग फुट क्षेत्र में 5236.58 रुपये के किराये पर रह रहा है, तथा जिसमें 515.35 रुपये प्रति माह की दर से जल शुल्क भी शामिल है, इस बिन्दु को पर्याप्त रूप से उजागर करता है।)*
> (जोर दिया गया)

37. किरायेदार को पट्टे पर दिए गए परिसर के बाजार मूल्य के अनुरूप उचित उपयोगकर्ता शुल्क का भुगतान करने का निर्देश देने वाला आदेश

विवादों के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण में इस बदलती प्रवृत्ति का प्रतिबिंब है, जिन्हें किरायेदारी विवादों की तुलना में किराया नियंत्रण विवाद कहना अधिक उचित होगा। मकान मालिक के हित, जो बेदखली का आदेश प्राप्त करता है, लेकिन उसे परिसर देने से मना कर दिया जाता है - निस्संदेह किरायेदार को अपील के अपने अधिकार का प्रयोग करने का अवसर देने के लिए - को केवल इसलिए संरक्षित नहीं माना जा सकता है क्योंकि रोक देने के समय, जमा राशि की शर्त लगाई गई थी। इस न्यायालय का विचार है कि जब जमा की प्रारंभिक शर्त बाजार दर के अनुरूप उचित उपयोगकर्ता शुल्क की थी, तो किसी भी कल्पना से यह नहीं कहा जा सकता है कि जब जमा की मात्रा बीस वर्षों से अधिक समय तक अपरिवर्तित रहती है तो मकान मालिक का हित सुरक्षित रहता है।

38. उपर्युक्त को देखते हुए, इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आदेश नियम 5 के तहत बेदखली के आदेश की तारीख से परिसर के निरंतर उपयोग के लिए उचित उपयोगकर्ता शुल्क जमा करने/भुगतान करने की शर्त लगाने वाला आदेश अंतिम नहीं है और कार्यवाही में बाद के चरण में इसे बदला जा सकता है। यह कार्य अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से अथवा किसी भी पक्ष के आवेदन पर किया जा सकता है। परिवर्तन पूर्व निर्धारित राशि को बढ़ाने या घटाने के लिए हो सकता है और यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर

निर्भर करेगा। इसका कोई अनम्य सूत्र नहीं बनाया जा सकता कि कितनी बार या किस सीमा तक मात्रा को संशोधित किया जाना चाहिए; इसका निर्णय अपीलीय न्यायालय के विवेक पर होगा, जो प्रत्येक मामले से संबंधित विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर निर्णय लेगा। तथापि, ऐसे किसी भी आवेदन पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि संशोधन चाहने वाला पक्ष ऐसी परिवर्तित परिस्थितियां दिखाने में सक्षम न हो जो संशोधन को उचित ठहराती हों।

विलयन के सिद्धांत के संबंध में

39. इससे हम श्री गुप्ता के दूसरे तर्क पर आते हैं; वर्तमान मामले में, उचित न्यायालय जो रोक के लिए जमा की शर्त को संशोधित कर सकता था, वह उच्चतम न्यायालय है। उन्होंने तर्क दिया कि अपीलीय न्यायालय द्वारा 12 अप्रैल, 2001 को दिया गया आदेश, जिसमें यह शर्त लगाई गई थी, सिविल अपील संख्या 7988/2004 में उच्चतम न्यायालय द्वारा 10 दिसम्बर, 2004 को दिए गए आदेश के साथ विलय हो गया है। यह देखते हुए कि 12 अप्रैल, 2001 का आदेश उच्चतम न्यायालय के उक्त आदेश के साथ विलय हो गया है, यह तर्क दिया गया है कि आदेश नियम 5 के तहत लगाई गई जमा की शर्त को केवल उच्चतम न्यायालय द्वारा ही संशोधित किया जा सकता है।

40. उन्होंने तर्क दिया कि जब उच्चतम न्यायालय ने जमा राशि की मात्रा के मुद्दे पर विचार कर लिया और निर्णय के अंतिम पैराग्राफ में जमा की शर्त के रूप में 15,000/- रुपये (केवल पंद्रह हजार रुपये) प्रति माह लगाने को बरकरार रखा, तो अब विलयन के सिद्धांत के मद्देनजर अपीलीय न्यायालय द्वारा इसे संशोधित नहीं किया जा सकता है। आक्षेपित आदेशों में कहा गया है कि इस मामले में विलयन का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता, क्योंकि उच्चतम न्यायालय के 10 दिसंबर, 2004 के आदेश में जमा राशि की मात्रा के मुद्दे पर विचार नहीं किया गया। इसने कुन्हायम्मेद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य, 65 के मामले पर भरोसा करते हुए कहा कि विलयन का सिद्धांत वहां लागू नहीं होता जहां अपीलीय न्यायालय का निर्णय किसी विशेष मुद्दे पर मौन है। यह न्यायालय स्वयं को किरायेदार के इस तर्क, तथा अपीलीय न्यायालय के निष्कर्षों के आधार से सहमत होने में असमर्थ पाता है। यह विलयन के सिद्धांत की गलत समझ और बेदखली के आदेश पर रोक लगाने के लिए जमा की शर्त लगाने वाले आदेश की प्रकृति की गलत समझ पर आगे बढ़ता है।

41. *विलयन का सिद्धांत, जैसा कि उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा 1958 में आयकर आयुक्त, बॉम्बे बनाम अमृत भोगीलाल एंड कंपनी, 66 में व्यक्त किया गया था और जिसे उच्चतम न्यायालय के*

तीन न्यायाधीशों की दो अलग-अलग पीठों द्वारा गोजर ब्रदर्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम रतन लाल सिंह, 67 और कुन्हयाम्मेड एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य, 68 में दोहराया और पुष्टि की गई थी, इस प्रकार था:

> ***10.*** *इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि किसी अधिकरण द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील की जाती है तो अपीलीय प्राधिकारी का निर्णय ही कानून में प्रभावी निर्णय होता है। यदि अपीलीय प्राधिकारी अधिकरण के निर्णय को संशोधित करता है या उलट देता है, तो यह स्पष्ट है कि यह अपीलीय निर्णय ही प्रभावी है और उसे लागू किया जा सकता है। कानून में स्थिति बिल्कुल वैसी ही होगी, भले ही अपीलीय निर्णय केवल अधिकरण के निर्णय की पुष्टि करता हो। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अधिकरण के निर्णय की पुष्टि या अभिपुष्टि के परिणामस्वरूप, मूल निर्णय अपीलीय निर्णय में विलीन हो जाता है और <u>केवल अपीलीय निर्णय ही अस्तित्व में रहता है तथा प्रभावी और प्रवर्तनीय होता है...</u>*
>
> (जोर दिया गया)

42. गोजर ब्रदर्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम रतन लाल सिंह, 69 में न्यायालय ने टिप्पणी की:

> ***11.*** *विलयन के सिद्धांत का विधिक औचित्य इस सिद्धांत में खोजा जा सकता है कि एक ही समय में एक ही विषय-वस्तु को नियंत्रित करने वाला एक से अधिक प्रभावी आदेश नहीं हो सकता। इसलिए, यदि किसी अवर न्यायालय का निर्णय वरिष्ठ न्यायालय द्वारा परीक्षण के अधीन कर दिया जाता है, तो कानून की दृष्टि में उसका अस्तित्व*

समाप्त हो जाता है तथा उसे वरिष्ठ न्यायालय के निर्णय द्वारा अधिरोहित माना जाता है। दूसरे शब्दों में, अवर न्यायालय का निर्णय वरिष्ठ न्यायालय के निर्णय के साथ विलय होने पर अपनी पहचान खो देता है।

(जोर दिया गया)

43. सैय्यद जौद हुसैन बनाम गेंदन सिंह (अब दिवंगत) एवं अन्य, 70 में प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के निर्णय को उद्धृत करने के बाद, जिसमें कहा गया था कि निष्पादित की जाने वाली डिक्री अपीलीय न्यायालय की डिक्री है न कि मूल डिक्री, न्यायालय ने आगे टिप्पणी की:71

17. इसी सिद्धांत के अनुप्रयोग से यह परिणाम प्राप्त होता है कि यदि अपील न्यायालय निचले न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करता है, उसमें परिवर्तन करता है या उसे उलट देता है, तो अपीलीय न्यायालय का निर्णय ही एकमात्र निर्णय है जिसे संशोधित किया जा सकता है। [बृज नवाम बनाम तिजबल बिक्रम, (1910) 37 आईए 70: आईएलआर 32 ऑल 295.] या यह कि किसी डिक्री के निष्पादन की सीमा निष्पादन योग्य डिक्री की तारीख से चलती है और वह अपीलीय न्यायालय की डिक्री है जो प्रथम अवस्था के न्यायालय की डिक्री का स्थान लेती है [एआईआर 1926 पीसी 63: 51 एमएलजे 781: 53 आईए 197] या यदि वाद की तारीख से लेकर डिक्री की तारीख के पश्चात तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति तक मध्यवर्ती लाभ का आदेश दिया जाता है, तो विचारणीय डिक्री निष्पादन योग्य डिक्री होगी, ताकि यदि अपील में विचारण न्यायालय की डिक्री की पुष्टि हो जाती है, तो अपीलीय डिक्री की तारीख से तीन वर्ष की अवधि प्रारम्भ होगी। [भूप इंदर बनाम

बिजाई, (1900) 27 आईए 209: आईएलआर 23 सभी 152: 5 सीडब्ल्यूएन 52.]।"

(जोर दिया गया)

44. उपर्युक्त प्राधिकारियों पर चर्चा करने के बाद और उसके द्वारा विचाराधीन विधि के मुद्दे के गुण-दोष पर विचार करने से पहले, उच्चतम न्यायालय ने कुन्हयाम्मेड एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य, 72 में संक्षिप्त टिप्पणी की थी:

> ***12.*** *विलयन के सिद्धांत में अंतर्निहित तर्क यह है <u>कि किसी भी समय एक ही विषय-वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक डिक्री या प्रभावी आदेश नहीं हो सकते हैं।</u> जब किसी अवर न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी द्वारा पारित डिक्री या आदेश को किसी उच्चतर फोरम के समक्ष विधि के अंतर्गत उपलब्ध उपचार के अधीन रखा जाता है, तो यद्यपि चुनौती के अधीन डिक्री या आदेश प्रभावी और बाध्यकारी बना रहता है, <u>फिर भी इसकी अंतिमता खतरे में पड़ जाती है।</u> एक बार जब वरिष्ठ न्यायालय अपने समक्ष लंबित वाद का किसी भी तरह से निपटारा कर देता है - चाहे अपील के अधीन डिक्री या आदेश को अपास्त कर दिया जाए या संशोधित कर दिया जाए या केवल पुष्टि कर दी जाए, तो वरिष्ठ न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी की डिक्री या आदेश ही <u>अंतिम, बाध्यकारी और प्रभावी डिक्री या आदेश होता है,</u> जिसमें निम्न न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी द्वारा पारित डिक्री या आदेश विलय हो जाता है।*
>
> *(जोर दिया गया)*

45. उस मामले में, उच्चतम न्यायालय इस मुद्दे पर विचार कर रहा था कि क्या पुनर्विलोकन के लिए आवेदन, किसी निर्णय के आधार पर धारणीय है, जबकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील की विशेष अनुमति के लिए दायर याचिका पर सुनवाई की गई और उसे बिना अनुमति के खारिज कर दिया गया। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि जहां अपील की अनुमति प्रदान की जाती है और अपील का निर्णय तर्कपूर्ण आदेश या अन्यथा के साथ किया जाता है, वहां मूल आदेश अपीलीय आदेश के साथ विलय हो जाता है और इसका पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता, क्योंकि विलयन के सिद्धांत के संचालन के कारण यह अस्तित्व में नहीं है।73 अन्य बातों के साथ-साथ यह भी टिप्पणी की गई कि जहां अपील की अनुमति नहीं दी जाती है या अनुमति दिए जाने पर, अपील को बिना किसी तर्कपूर्ण आदेश के खारिज कर दिया जाता है, वहां मूल आदेश जारी रहेगा और पुनर्विलोकन के लिए आवेदन वास्तव में धारणीय होगा, हालांकि अंतिम निर्णय विलयन के सिद्धांत के अलावा अन्य कारकों के कारण उच्चतम न्यायालय की राय से भिन्न नहीं हो सकता है।74

46. उपरोक्त सभी घोषणाएं इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचती हैं कि विलयन के सिद्धांत का संचालन विषयगत आदेश के प्रभावी प्रभाव के अनुरूप है। इस न्यायालय के समक्ष किरायेदार का तर्क यह है कि विलयन का

सिद्धांत इस स्तर पर अपीलीय न्यायालय द्वारा राशि को संशोधित किए जाने से रोकने के लिए कार्य करेगा, क्योंकि जमा की मात्रा के संबंध में अपीलीय न्यायालय का आदेश उच्चतम न्यायालय के आदेश के साथ विलय हो गया है। इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता - कम से कम सिद्धांत की अवधारणा को विकृत किये बिना तो नहीं। विलयन का सिद्धांत, अभिलेख द्वारा संचालित एक रोक होने के कारण, पूर्व न्याय के सिद्धांत का एक विस्तार मात्र है। यह प्रभावी डिक्री/आदेशों की बहुलता के विरुद्ध कार्य करता है, न कि किसी आदेश को जारी करने या डिक्री तैयार करने की न्यायालय की क्षमता के विरुद्ध। जब एक मूल डिक्री/आदेश सिद्धांत के संचालन द्वारा अपीलीय डिक्री/आदेश के साथ विलय हो जाता है, तो इसके 3 घटनाक्रम होते हैं:

46.1. मूल डिक्री/आदेश की आवश्यक प्रसंगति अस्तित्व में नहीं रहतीं - वे अपीलीय डिक्री/आदेश की प्रसंगति के साथ विलीन हो जाती हैं तथा समान हो जाती हैं।

46.2. मूल डिक्री/आदेश के निष्कर्ष अब अस्तित्व में नहीं हैं तथा उनमें संशोधन या परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

46.3. मूल डिक्री/आदेश में दिया गया निर्णय/तर्क समाप्त हो जाता है और उसे पूर्व निर्णय के रूप में कोई अधिकार नहीं माना जा सकता।

47. ऐसी ही परिस्थितियों में अतीत के आधिकारिक घोषणापत्रों में विलयन के सिद्धांत को लागू किया गया है - जैसे कि सीमा75 और निष्पादन योग्यता76 जैसी आवश्यक प्रसंगति का पता लगाना, या यह विचार करना कि क्या किसी निर्णय को पूर्व निर्णय के रूप में अधिकार प्राप्त होगा77, या यह विचार करना कि क्या कोई आदेश अंतिम और संशोधन योग्य है78 मौजूदा मामले में, आक्षेपित आदेशों में पहले के आदेश में संशोधन करने की मांग नहीं की गई है, न ही यह किसी मुद्दे के लिए अंतिम बन गया है। जैसा कि पहले ही माना जा चुका है, जमा की शर्त लगाने वाला आदेश शर्त या मात्रा के संबंध में न्यायिक निर्णय नहीं है; न ही यह न्यायालय को शर्त या मात्रा पर पुनर्विचार करने से रोकता है। इस संबंध में अर्जुन सिंह बनाम मोहिन्द्र कुमार एवं अन्य, 79 में उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियां शिक्षाप्रद हैं:

> *(13) ...इस प्रकार यदि किसी वाद के स्थगन के लिए आवेदन खारिज कर दिया जाता है, तो उसी उद्देश्य के लिए बाद में किया गया आवेदन, भले ही वह उसी तथ्य पर आधारित हो, किसी भी पूर्व न्याय नियम के आवेदन पर वर्जित नहीं होगा, <u>बल्कि उसे उन्हीं आधारों पर खारिज कर दिया जाएगा जिन पर मूल आवेदन को अस्वीकार किया गया था।</u> पूर्व न्याय के नियम और इस आधार पर अस्वीकृति के बीच अंतर करने वाला सिद्धांत कि किसी भिन्न आदेश को उचित ठहराने के लिए कोई नया तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया है, महत्वपूर्ण है। <u>यदि किसी विशेष तथ्यात्मक मुद्दे पर निर्णय के लिए पूर्व न्याय का सिद्धांत लागू होता है, तो भले ही न्यायालय के समक्ष नए तथ्य रखे गए हों, प्रतिबंध लागू रहेगा और मुद्दों की नई जांच में बाधा उत्पन्न होगी,</u>*

जबकि अन्य मामले में, नए तथ्यों के सबूत पर, न्यायालय सक्षम होगा, बल्कि उन्हें ध्यान में रखने और न्यायालय के समक्ष नए तथ्य लाए जाने के आधार पर आदेश देने के लिए बाध्य होगा।

(जोर दिया गया)

48. इस न्यायालय का विचार है कि ये सिद्धांत संहिता के आदेश नियम 5 के तहत बेदखली के आदेश पर रोक लगाने के लिए जमा राशि की शर्त लगाने वाले आदेश पर सभी तरफ से लागू होंगे। जैसा कि पहले अभिनिर्धारित किया गया था, किसी भी पक्षकार को अपील के संबंध में न्यायालय में पुनः आवेदन करने से कोई नहीं रोकेगा, जिसमें यह मांग की गई हो कि रोक प्रदान किया जाए, इसके लिए शर्त लगाई जाए, और/या जमा की राशि पर पुनर्विचार किया जाए - भले ही ऐसी दूसरी और/या आगे की आवेदन से पहले अपील या पुनरीक्षण में उन्हें अनुमोदित, संशोधित या अपास्त किया गया हो। हालाँकि, इस संबंध में सावधानी बरतनी चाहिए: दूसरा और/या आगे का आवेदन तब तक स्वीकार्य नहीं होगा जब तक कि ऐसे और तथ्य न दर्शा दिए जाएं जो न्यायालय को यह प्रक्रिया दोबारा शुरू करने के लिए बाध्य करें। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि बिना किसी अतिरिक्त तथ्य के ऐसा आवेदन प्रस्तुत करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी हो सकता है।

49. हालाँकि, जहाँ ऐसे नए और ताज़ा तथ्य वास्तव में दर्शाए गए हैं - निस्संदेह तथ्य जो अस्तित्व में नहीं थे या मूल आदेश दिए जाने के

समय उचित तत्परता बरतने के बावजूद पता नहीं लगाए जा सके थे - अपील पर विचार करते हुए न्यायालय नए तथ्यों पर विचार करने तथा रोक प्रदान करने, उसके लिए लगाई जाने वाली शर्त, तथा/या जमा की जाने वाली राशि, जैसा कि प्रार्थना की जाए, के संबंध में नया आदेश पारित करने के लिए बाध्य होगा। इस संबंध में एक और सावधानी बरती जानी चाहिए, क्योंकि दूसरे और/या आगे के आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह पहले अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी कानून पर उचित ध्यान दे। न्यायालय को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रावधानों, पूर्व निर्णय के सिद्धांत और निर्णय के सिद्धांत को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं करना चाहिए क्योंकि पूर्व न्याय का सिद्धांत और विलयन का सिद्धांत आदेश नियम 5 के तहत आदेश पर लागू नहीं होता है। वास्तव में, कुन्हायम्मेद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य 80 मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यही चेतावनी दी गई थी।

50. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि विलयन के सिद्धांत के मुद्दे के संबंध में अपीलीय न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क गलत था, लेकिन निष्कर्ष में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपीलीय न्यायालय का 12 अप्रैल, 2001 का आदेश वास्तव में उच्चतम न्यायालय के 10 दिसम्बर, 2004 के आदेश के साथ विलय हो गया। हालाँकि, यह

अपीलीय न्यायालय को मकान मालिक द्वारा नए सिरे से दायर आवेदन पर विचार करने से नहीं रोकता है और ऐसा करने के बाद, इस न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और मात्रा के संबंध में

51. इस मोड़ पर, सामान्यतः यह न्यायालय याचिका को खारिज कर देता, क्योंकि यह माना गया है कि अपीलीय न्यायालय के पास वास्तव में आक्षेपित आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार था। हालाँकि, श्री गुप्ता ने आक्षेपित आदेशों को चुनौती देते हुए विभिन्न आधार उठाए हैं। उनका तर्क है कि इनमें से प्रत्येक आधार अपने आप में, तथा साथ में इन सभी को मिलाकर भी, महत्वपूर्ण अनियमितता और/या पेटेंट अवैधता के बराबर है। उनका तर्क है कि ये अनियमितताएं ऐसी प्रकृति की हैं कि इनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक है।

52. उन्होंने तर्क दिया कि संहिता के आदेश नियम 5 के तहत आवेदन उस समय दायर किया गया था जब अपील अंतिम सुनवाई के लिए तय की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आवेदन स्पष्ट रूप से कार्यवाही में देरी करने के इरादे से दायर किया गया था। इस प्रकार, उन्होंने प्रस्तुत

किया कि आवेदन पर बिल्कुल भी सुनवाई नहीं की जानी चाहिए थी। इस न्यायालय का मत है कि यह आधार, अपने आप में, आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप का आधार नहीं हो सकता। मकान मालिक को संहिता के आदेश नियम 5 के तहत आवेदन दायर करने का अधिकार है, जिसका प्रयोग तत्काल मामले में किया गया है। अपीलीय न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह आवेदन पर विचार करे और उस पर आदेश पारित करे, जो उसने आक्षेपित आदेशों के रूप में किया है। धोखाधड़ी, दुर्भावना या न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के किसी भी प्रयास के विवरण के बावजूद, न तो आवेदन दाखिल करना और न ही आक्षेपित आदेशों को पारित करना महत्वपूर्ण रूप से अनियमित या स्पष्ट रूप से अवैध माना जा सकता है।

53. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि जिस तरीके से आवेदन पर विचार किया गया और आक्षेपित आदेश पारित किए गए, वह स्पष्ट रूप से अवैध है। जैसा कि पहले उल्लेख टिप्पणी की गई है, पहले आक्षेपित आदेश में संहिता के आदेश नियम 5 के तहत आवेदन को धारणीय मानते हुए, पक्षकारगण को जमा राशि की मात्रा की गणना करने में न्यायालय की सहायता के लिए उचित शपथ पत्रों द्वारा समर्थित दस्तावेज दाखिल करने का निर्देश दिया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि आवेदन को धारणीय माने जाने के लिए, विचार किए जाने से पहले उसे पर्याप्त सामग्री के साथ

दायर किया जाना चाहिए तथा शपथ पत्र द्वारा समर्थित होना चाहिए। उन्होंने प्रस्तुत किया कि ऐसे शपथ पत्र और दस्तावेजों के अभाव में, अपीलीय न्यायालय के पास आवेदन को धारणीय मानने या पक्षकारगण को शपथ पत्र और/या दस्तावेज दाखिल करने का निर्देश देने में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने का कोई आधार नहीं था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि शपथपत्र और दस्तावेजों के बिना अपीलीय न्यायालय को पहला आक्षेपित आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होता।

54. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि इसके बाद भी, दूसरे आक्षेपित आदेश को पारित करने से पहले, कोई विचारण नहीं किया गया, और न ही परिसर से प्राप्त होने वाले मूल्य के संबंध में पक्षकारगण को कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई। उन्होंने प्रस्तुत किया कि मकान मालिक ने अपने मामले के समर्थन में जिन दस्तावेजों को आधार बनाया - जो उसी इमारत में स्थित परिसर के लिए व्यापारिक घरानों के साथ पट्टे पर थे - वे एकतरफा दस्तावेज थे जो विवाद शुरू होने के बाद तैयार किए गए थे। उन्होंने तर्क दिया कि दस्तावेजों में किरायेदारों को प्रदान की गई सुविधाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए पट्टे के मूल्य को परिसर से प्राप्त उचित किराए का संकेतक नहीं माना जाना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि किसी भी मामले में किरायेदार को अनुबंध के

पक्षकारगण से प्रतिपरीक्षा करने का मौका दिया जाना चाहिए था। अंत, में उन्होंने प्रस्तुत किया कि किसी भी मामले में संशोधित उपयोगकर्ता शुल्क उस तारीख से देय होना चाहिए था, जब दस्तावेज और शपथ पत्र अभिलेख पर लाए गए थे, चूंकि यह वह दिन था जब उपयोगकर्ता शुल्क को संशोधित करने में विवेकाधिकार के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए सामग्री वास्तव में अभिलेख पर उपलब्ध थी। यहां नीचे चर्चा किए गए कारणों के आधार पर ये प्रस्तुतियाँ बिना गुणागुण के खारिज किए जाने योग्य हैं।

55. यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलीय न्यायालय उस समय क्षेत्राधिकार से बाहर था जब उसने पहला आक्षेपित आदेश पारित किया था। संहिता के आदेश नियम 5 के अंतर्गत रोक प्रदान करते समय शर्तें लगाने का न्यायालय का क्षेत्राधिकार साम्यापूर्ण प्रकृति का है।81 यह शक्ति, उस साम्यापूर्ण शक्ति की एक आवश्यक प्रसंगति है जिसका प्रयोग न्यायालय उस आदेश पर रोक लगाने के लिए करता है जिसके विरुद्ध अपील की गई है। इसका प्रयोग स्वप्रेरणा से भी किया जा सकता है, बशर्ते कि इस शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो। यह न्यायिक औचित्य और न्यायिक अनुशासन का मामला है कि न्यायालय स्वप्रेरणा से शक्ति का प्रयोग नहीं करता है -विशेष रूप से इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अधिकतर मामलों में, ऐसी कार्यवाही को

उचित ठहराने के लिए अभिलेख पर सामग्री तब तक उपलब्ध नहीं हो सकती है जब तक कि कोई पक्ष वास्तव में न्यायालय से अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अनुरोध नहीं करता है। हालाँकि, इसे इस प्रकार नहीं समझा जा सकता कि अभिलेख पर सामग्री की अनुपस्थिति न्यायालय को संहिता के आदेश नियम 5 के तहत रोक देते समय शर्तें लगाने की शक्ति से वंचित करती है।

56. अपीलीय न्यायालय को संहिता के आदेश नियम 5 के तहत आवेदन पर विचार करने का अधिकार प्राप्त होने के कारण, प्रथम आक्षेपित आदेश पारित किया था, जिसमें कहा गया था कि यदि इसके लिए पर्याप्त कारण दर्शाया गया है, तो वह वास्तव में उपयोगकर्ता शुल्क को संशोधित करने के लिए सक्षम है। यह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए था कि मकान मालिक द्वारा संहिता के आदेश नियम 5 के अंतर्गत आवेदन के समर्थन में कोई भी दस्तावेज बिना किसी शपथ पत्र के दायर किया गया था, जिसके आधार पर अपीलीय न्यायालय ने पहला आक्षेपित आदेश पारित किया था, जिसमें निर्देश दिया गया था कि आवेदन और दस्तावेजों के समर्थन में शपथ पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है। प्राधिकारी में निहित शक्ति के प्रयोग से पारित आदेश, जिसमें पक्षकारों को प्राधिकारी को शक्ति का समुचित प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया हो, उसे शायद ही अवैध या अभिलेख में उपलब्ध

सामग्री के विपरीत माना जा सकता है। इसके विपरीत, अपीलीय न्यायालय ने जमा राशि की मात्रा के संबंध में जांच में सहायता के लिए पक्षकारगण को शपथ पत्रों द्वारा समर्थित दस्तावेज दाखिल करने का निर्देश देकर सही रास्ता अपनाया। ऐसा करते हुए,अपीलीय न्यायालय महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम सुपरमैक्स इंटरनेशनल प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, 82 में उच्चतम न्यायालय के आदेश का पालन कर रहा था, जहां निर्णय में न्यायालय को संयम बरतने और कोई अत्यधिक, काल्पनिक या दंडात्मक राशि निर्धारित न करने की चेतावनी दी गई थी।83

57. इसके अलावा, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि दूसरा आक्षेपित आदेश इस न्यायालय के समक्ष प्रचारित कारणों से स्पष्ट रूप से अवैध था। संहिता के आदेश नियम 5 के तहत किसी आवेदन पर शर्तों के अधीन रोक देने के लिए पारित किए जाने वाले आदेश को एक पैकेज के रूप में देखा जाना चाहिए; अपीलार्थी को यह तर्क देते हुए नहीं सुना जा सकता कि वह आदेश को स्वीकार करता है, क्योंकि यह निष्पादन पर रोक लगाता है, लेकिन शर्तों पर आपत्ति करता है।84 यह शायद ही कहा जा सकता है कि अपीलीय न्यायालय को इस प्रश्न पर निर्णय करना चाहिए कि क्या रोक को शपथपत्रों और दस्तावेजों की फोटोकॉपी के आधार पर सरसरी तौर पर दिया जाना चाहिए, बल्कि उसे जमा राशि की

मात्रा का पता लगाने के उद्देश्य से विस्तृत सुनवाई करनी चाहिए। किरायेदार का यह तर्क नहीं था - और न ही हो सकता था - कि अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अभूतपूर्व थी या विधि पर आधारित नहीं थी। केवल इसलिए कि अपीलीय न्यायालय ने पक्षों द्वारा दायर शपथ पत्रों और दस्तावेजों के आधार पर मात्रा का पता लगाने के लिए कार्यवाही की है, इसे इतनी बड़ी और स्पष्ट त्रुटि नहीं माना जा सकता कि अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप की आवश्यकता हो; इस न्यायालय का विचार है कि यह कोई त्रुटि नहीं है, बल्कि उचित मार्ग अपनाया जाना चाहिए था।

58. यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अपीलीय न्यायालय ने दोनों पक्षों, मकान मालिक और किरायेदार दोनों को शपथ पत्रों द्वारा समर्थित दस्तावेज दाखिल करने का अवसर दिया था, ताकि न्यायालय को तत्काल मामले में तय की जाने वाली राशि का पता लगाने में सक्षम बनाया जा सके। दूसरे आक्षेपित आदेश में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि जबकि मकान मालिक ने किराये की दरें, उसी भवन में परिसर सहित आसपास के किरायेदारों के विवरण और विवरण प्रस्तुत किए हैं, किरायेदार ने किरायेदारी के क्षेत्र जैसे बुनियादी विवरण भी नहीं दिए हैं, जिन पर भरोसा किया जाना चाहिए। इसमें उल्लेख किया गया है कि किरायेदार अपने मामले के समर्थन में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत करने में

विफल रहा है और साथ ही मकान मालिक के मामले का खंडन करने में भी विफल रहा है। यह टिप्पणी की गई है कि किरायेदार को यह तर्क देते हुए नहीं सुना जा सकता कि उसी भवन में परिसर द्वारा प्राप्त किराए को दर्शाने वाले दस्तावेजों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि उनमें किरायेदारों को प्रदान की गई सुविधाओं का विवरण नहीं दिया गया है। इसमें टिप्पणी की गई है कि न्यायालय किरायेदार की ओर से इसके विपरीत सबूत के अभाव में यह मान सकता है - यद्यपि यह एक खंडनीय अनुमान है - कि किरायेदार को उसी परिसर में अन्य किरायेदारों के समान सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। इसमें टिप्पणी की गई है कि चूंकि किरायेदार उसी भवन में रहता है, इसलिए यदि वह अपनी किरायेदारी को अन्य किरायेदारों से अलग करना चाहता है, तो उसे अन्य किरायेदारों को उपलब्ध कराई गई सुविधाओं के बारे में विवरण प्रदान करना चाहिए था न कि मकान मालिक द्वारा विवरण प्रस्तुत करने में विफलता जैसे अस्वीकृति के लिए तकनीकी आधार उठाना चाहिए था।

59. इस आपत्ति के संबंध में कि अभिलेख पर प्रस्तुत विभिन्न समझौतों और पट्टों में अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर मूल्य दर्शाया गया है, अपीलीय न्यायालय ने टिप्पणी की कि ये समझौते उन व्यापारिक घरानों के साथ हैं जो परिसर से अपना-अपना कारोबार चला रहे हैं। यह टिप्पणी की गई कि यह अकल्पनीय है कि कोई व्यावसायिक प्रतिष्ठान केवल मकान मालिक

के कहने पर बढ़ी हुई किराया दरों के साथ विधिवत पंजीकृत समझौता निष्पादित कर सकता है। यह इन परिस्थितियों में है कि अपीलीय न्यायालय ने दूसरा आक्षेपित आदेश दिया। जहां दोनों पक्षकारगण को निर्धारित की जाने वाली मात्रा के संबंध में अपना मामला रखने के लिए समान और पर्याप्त अवसर दिया गया हो, और जहां न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सभी सामग्री पर विचार करता है और उसके आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है, वहां इसे स्पष्ट रूप से अवैध और हस्तक्षेप योग्य नहीं माना जा सकता।

60. श्री गुप्ता ने अंत में तर्क दिया कि पट्टे पर दिए गए परिसर के लिए उपयोगकर्ता शुल्क के रूप में प्रति माह 1,60,000/- रुपये (केवल एक लाख साठ हजार रुपये) जमा की मात्रा का निर्धारण पूरी तरह से दुर्भर है। उनका तर्क है कि मात्रा को 25,000/- (पच्चीस हजार रुपये मात्र) से बढ़ाकर 1,60,000/- (एक लाख साठ हजार रुपये मात्र) करना पूरी तरह से अनुचित है, विशेषकर जब अनुबंधगत किराया 371.90/- (तीन सौ इकहत्तर रुपये और नब्बे पैसे मात्र) है। उन्होंने तर्क दिया कि उच्चतम न्यायालय ने 10 दिसंबर, 2004 के अपने आदेश में, यह देखते हुए भी कि निकटवर्ती परिसर को 3,50,000/- रुपये (केवल तीन लाख पचास हजार रुपये) में किराये पर दिया गया था, यह टिप्पणी की थी कि परिसर के लिए प्रति माह 15,000/- रुपये (केवल पंद्रह हजार रुपये) की

राशि उचित उपयोगकर्ता शुल्क है। उन्होंने तर्क दिया कि इसके मद्देनजर, अपीलीय न्यायालय द्वारा उपयोगकर्ता शुल्क को प्रति माह 1,60,000/- रुपये (केवल एक लाख साठ हजार रुपये) तक बढ़ाना सही नहीं था।

61. उन्होंने आगे तर्क दिया कि यह मानते हुए भी कि इस परिसर से प्रति माह 3,20,000/- (केवल तीन लाख बीस हजार रुपये) से अधिक की कमाई हो सकती है, अपीलीय न्यायालय को अपने समक्ष पक्षकारगण के मामले से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों पर न्यायिक विचार किए बिना, पचास प्रतिशत की दर से उपयोगकर्ता शुल्क स्वीकृत नहीं करना चाहिए था। उनका तर्क है कि जमा राशि की मात्रा 1,60,000/- रुपए (केवल एक लाख साठ हजार रुपए) निर्धारित करने वाले आक्षेपित आदेश के परिणामस्वरूप किरायेदार को गंभीर रूप से नुकसान होगा, क्योंकि किरायेदार के जमा राशि जमा करने में असमर्थ होने और इसके परिणामस्वरूप परिसर खोने की संभावना है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलीय न्यायालय ने अपने पास मौजूद आंकड़े पर मात्रा तय करने के लिए कोई कारण नहीं बताया है और लगभग पूरी तरह से अनुमानों और कल्पना पर आगे बढ़ा है और दूसरे आक्षेपित आदेश को अपास्त कर दिया जाना चाहिए।

62. यह तर्क ऐसा है जिसे अनुच्छेद 227 के तहत याचिका में शामिल नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रूप से अंतरिम आदेश के संबंध में। ये तर्क, यदि स्वीकार भी कर लिए जाएं, तो भी इस न्यायालय की पर्यवेक्षी शक्ति के प्रयोग में सुधार किए जाने योग्य क्षेत्राधिकार की त्रुटि को प्रकट नहीं करते हैं; अधिक से अधिक ये तथ्यों की त्रुटियाँ हैं। इस न्यायालय की पर्यवेक्षी अधिकारिता का प्रयोग मात्र तथ्य या विधि की त्रुटियों को सुधारने के लिए तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि त्रुटि कार्यवाही के दौरान स्पष्ट रूप से प्रकट न हो, जैसे कि जब वह स्पष्ट अज्ञानता या विधि के प्रावधानों की पूर्ण अवहेलना पर आधारित हो, और उसके कारण गंभीर अन्याय या न्याय की घोर विफलता हुई हो।85

63. अपीलीय न्यायालय ने पक्षकारगण द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री और इस तथ्य पर विचार किया है कि समान परिसरों के लिए प्रति माह प्रति वर्ग फुट 270/- रुपये (केवल दो सौ सत्तर रुपये) से लेकर 420/- रुपये (केवल चार सौ बीस रुपये) की दर से किराया मिल रहा है और उपलब्ध कराई गई सुविधाओं के कारण भिन्नता की संभावना को ध्यान में रखते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पट्टे पर दिया गया परिसर प्रति माह प्रति वर्ग फुट कम से कम 270/- रुपये (केवल दो सौ सत्तर रुपये) अर्जित करने में सक्षम होगा। यह टिप्पणी की गई कि चूंकि इस तर्क के समर्थन में कोई सामग्री अभिलेख में नहीं रखी गई कि पट्टे पर दिए गए

परिसर का हिस्सा बनने वाले दो गैराजों से प्रति माह 1,00,000/- (केवल एक लाख रुपये) की आय हो सकती है, इसलिए यह माना जा सकता है कि उनकी लोकेशन और सुगम्यता को देखते हुए उन्हें प्रति माह 25,000/- (केवल पच्चीस हजार रुपये) की आय होगी।

64. इस आधार पर, और यह देखते हुए कि मकान मालिक ने वास्तविक मूल्य के केवल पचास प्रतिशत के लिए प्रार्थना की थी जिसे परिसर प्राप्त करने में सक्षम होगा, अपीलीय न्यायालय ने जमा की राशि को संशोधित कर 1,60,000/- रुपये (केवल एक लाख साठ हजार रुपये) प्रतिमाह कर दिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय ने अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध सभी सामग्रियों और मुद्दे से संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित विचार किया है, जैसा कि दूसरे आक्षेपित आदेश में पाया गया है। किरायेदार, वस्तुतः, यह प्रार्थना कर रहा है कि यह न्यायालय अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सामग्री पर पुनर्विचार करे; इस न्यायालय को ऐसा करने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

65. यह न्यायालय, अपने पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, स्वयं को अपील न्यायालय में परिवर्तित नहीं करेगा और साक्ष्यों के पुनर्विवेचन या मूल्यांकन में अथवा निष्कर्ष निकालने में त्रुटियों को सुधारने में अथवा मात्र औपचारिक या तकनीकी प्रकृति की त्रुटियों को सुधारने में संलग्न नहीं होगा।86 अपीलीय न्यायालय द्वारा जमा की मात्रा को उक्त आंकड़े पर निर्धारित करने का दृष्टिकोण एक उचित रूप से संभव दृष्टिकोण है; इसे पेटेंट त्रुटि नहीं माना जा सकता जिसके तहत हस्तक्षेप किया जा सके।87

66. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिका को गुणागुण रहित मानते हुए खारिज किया जाता है। पक्षकारगण को अपना शुल्क स्वयं वहन करना होगा।

नजमी वज़ीरी

(न्यायाधीश)

07 मई, 2014

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्मेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*